

प्राचीन भारतीय संस्कारों का समालोचनात्मक अध्ययन

सारांश

भारतीय संस्कृति के निश्चल प्रवाह में जिन अवधारणाओं ने शनैः शनैः एक निश्चित स्वरूप ग्रहण करके भारत के मानव-जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया और जो हिन्दूधर्म का एक अनिवार्य अंग बन गई, उनमें से एक अवधारणा 'संस्कार' की थी। संस्कारों द्वारा मनुष्य की मानसिक आध्यात्मिक एवं शारीरिक शुद्धि होकर समस्त जीवन के उत्थान की अद्भुत परम्परा प्रस्तुत होती है।

मुख्य शब्द : संस्कार, गर्भाधान, चूड़ाकरण, उपनयन, विवाह एवं अन्त्येष्टि।

प्रस्तावना

सरकार शब्द सम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु ने घञ् प्रत्यय लगाने में बनता है जिसका शाब्दिक अर्थ है परिष्कार, शुद्धता या पवित्रता। इस प्रकार हिन्दू व्यवस्था में संस्कारों का विधान व्यक्ति के शरीर को परिष्कृत या पवित्र बनाने के उद्देश्य से किया गया ताकि वह वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास के लिए उपयुक्त बन सके। जैमिनी सूत्र की शबर टीका से संस्कार शब्द का इस प्रकार अर्थ किया गया है कि— "संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य" अर्थात् संस्कार वह है कि जिसके हो जाने पर पदार्थ (या व्यक्ति) किसी कार्य के योग्य हो जाता है। तन्त्रवार्तिक के अनुसार— "योग्यता चादधानाः क्रिया संस्कारा इच्युच्यन्ते" अर्थात् योग्यता का आधान करने वाली क्रियाएं संस्कार कहलाती हैं। इसी प्रकार वेदान्तसूत्र पर शांकर भाष्य में कहा गया है कि— "संस्कारो हि नाम गुणाधानेन वा स्याद् दोषापनयनेनवा" अर्थात् संस्कारों द्वारा गुणों का आधान किया जाता है और दोषों को दूर किया जाता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार शरीर, मन और आत्मा को उत्तम बना देने वाली क्रियाएं ही संस्कार हैं— "येन शरीर मन आत्मा चोत्तमा भवन्ति सः संस्कार इत्युच्यते"। इस प्रकार विभिन्न शास्त्रगत परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि संस्कार ही से व्यक्ति के बाह्य परिष्करण के साथ-साथ आभ्यन्तर परिष्करण भी हो जाता है और संस्कार ही व्यक्ति को विभिन्न क्रियाओं के योग्य बनाकर उसके जीवन को सार्थकता प्रदान करता है।



दिलीप कुमार झा

प्रोफेसर,

शिक्षाशास्त्र विभाग,

प्रज्ञा कॉलेज ऑफ एजुकेशन,

बहादुरगढ़, हरियाणा

संस्कार की स्मृति काल में अनिवार्यता इतनी बढ़ी कि संस्कार (उपनयन) होने से ही द्विजत्व सिद्ध होने लगा— "संस्कारात् द्विज उच्यते" मनु का भी कथन है संस्कार से मनुष्य द्विज कहलाने का अधिकारी होता है। "जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते"। इतना महत्वपूर्ण होने के बावजूद भी संस्कार शब्द का उल्लेख वैदिक संहिताओं तथा ब्राह्मण साहित्यों में नहीं मिलता है। इनका प्रथम वैज्ञानिक विवेचन 'बृहदारण्यक' उपनिषद् में है, जहाँ गर्भाधान संस्कार का उल्लेख है। हालांकि ऋग्वेद में गर्भाधान, विवाह तथा अन्त्येष्टि के मंत्र अवश्य प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद में उन संक्षिप्त सूक्तों का और भी विस्तृत रूप प्राप्त होता है। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के ये ही मंत्र स्मृति काल में तत्रद् संस्कार के अवसर पर प्रयोग किए गए हैं। लेकिन संस्कार विवेचन की दृष्टि से सूत्र साहित्य विशेषतया गृह्यसूत्र समृद्ध है। गृह्यसूत्रों में गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक सारे संस्कारों का विविध एवं विस्तृत वर्णन है। इन सूत्रों में संस्कारों का वर्णन प्रायः विवाह संस्कार से प्रारम्भ हुआ है कुछ गृह्यसूत्रों में अन्त्येष्टि संस्कार का वर्णन संस्कारों के क्रम में न करके परिशिष्ट में दिया गया है। सभी गृह्यसूत्रों से संस्कारों का स्वरूप मूलतया तो एक-सा है, किन्तु ये गृह्यसूत्र भिन्न-भिन्न वेदों से सम्बद्ध होने के कारण उनसे थोड़ा-सा अन्तर भी दृष्टिगोचर होता है। धर्मसूत्रों में संस्कारों को विधि का वर्णन तो अत्यल्प है किन्तु संस्कारों की सामाजिक उपयोगिता को भली प्रकार प्रकट किया गया है। स्मृति ग्रंथों ने आचार विवेचन के अन्तर्गत संस्कारों का वर्णन किया गया है। उपनयन एवं विवाह, इन दो संस्कारों का बहुत विस्तृत वर्णन स्मृतिकारों ने किया है, क्योंकि इन्हीं दो संस्कारों से ब्रह्मचर्य और गृहस्थ ये दो आश्रम प्रारम्भ होते हैं।

संस्कारों का वर्गीकरण

संस्कारों के व्यवस्थित विकास के युग से स्त्रियों और शूद्रों की सामाजिक हीनता प्रारम्भ हो गई थी। अतः शास्त्रों में इस प्रकार के वचन मिलते हैं। जिनसे प्रतीत होता है कि ये संस्कार ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के पुरुष-वर्ग के लिए ही सीमित थे शूद्रों के लिए या तो संस्कारों की आवश्यकता नहीं समझी गई या उनको मंत्रों से रहित अनुष्ठानों की सुविधा दी गई। स्त्री के लिए भी धर्मशास्त्रकारों ने विभिन्न संस्कारों का विधान तो किया, किंतु साथ ही यह व्यवस्था भी दी कि स्त्रियों के संस्कार किए जाते समय वैदिक मंत्रों का उच्चारण नहीं होना चाहिए। केवल एक विवाह संस्कार ही ऐसा है जिसमें पुरुष के साथ स्त्री का भी वैदिक मंत्रों से संस्कार किया जाता है, साथ ही स्त्रियों के लिए विवाह करके पति की सेवा करने में ही संस्कारों की सम्पन्नता मान ली गई।

संस्कारों की सख्या निश्चित नहीं है आश्वलायन गृह्यसूत्र से 12, पारस्कर, बोधायन एवं वाराह-गृह्यसूत्र में 13 तथा बैखानस गृह्यसूत्र में 18 संस्कारों का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार गौतम धर्मसूत्रों में 40 संस्कारों का निर्देश मिलता है जिनमें अनेक पाकयज्ञ, हर्वियज्ञ, सोमयज्ञ तथा वेदव्रज सम्मिलित कर दिए गए हैं, जिनसेन ने 108 संस्कारों की गणना की है। मनुस्मृति में तेरह संस्कारों को माना गया है। यज्ञवल्क्यस्मृति में केशान्त की छोड़कर, मनुस्मृति के शेष बारह संस्कारों का विधान है, परन्तु परवर्ती स्मृतियों से सोलह संस्कारों का उल्लेख मिलता है तथा सामान्य रूप से इन्हें ही हिन्दुओं का संस्कार माना जाता है ये हैं—गर्भाधान पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह तथा अन्त्येष्टि।

गर्भाधान संस्कार

यह सन्तान-प्राप्ति के लिए किया जाने वाला प्रथम एवं महत्वपूर्ण संस्कार है। इस संस्कार को 'निषेक' (मनु-स्मृति) या 'चतुर्थी कर्म' (पारस्कर गृह्यसूत्र, आपस्तम्ब गृह्यसूत्र) भी कहा गया है, किन्तु बैखानस ने निषेक तथा गर्भाधान को मन्त्र-भिन्न माना है। पति एवं पत्नी उपवास तथा विभिन्न यज्ञादि से मन को पवित्र करके, परस्पर अनुरक्त मन होकर, देवताओं के आवाहपूर्वक सन्तानोत्पत्ति में प्रवृत्त होते थे। शास्त्रों के अनुसार गर्भाधान शुभ नक्षत्र और तिथि में करना चाहिए। ऋतुकाल के बाद की चौथी से सोलहवीं रात्रियाँ गर्भाधान के लिए उपयुक्त बताई गई हैं। अधिकांश गृह्यसूत्रों तथा स्मृतियों में चौथी रात्रि को शुद्ध माना गया है। आठवीं, पन्द्रहवीं, अठारहवीं एवं तीसवीं रात्रियों में गर्भाधान वर्जित था। सोलहरात्रियों में प्रथम चार, ग्यारह एवं तेरह निन्दित कही गई है तथा शेष दस को श्रेयस्कर बताया गया है। गर्भाधान के निमित्त रात्रि का समय ही उपयुक्त था, दिन में यह कार्य वर्जित था। साथ ही रात्रि का 'अन्तिम पहर' भी अभीष्ट माना गया, लेकिन जो व्यक्ति अपनी पत्नी से दूर विदेश में रहते थे उनके लिए इस नियम में छूट प्रदान की गई।

ऐसी मान्यता थी कि समरात्रियों में गर्भाधान होने पर पुत्र एवं विषम में कन्या उत्पन्न होती है। ऋषि दयानन्द ने लिखा है कि पुत्र की इच्छा होने पर ऋतुकाल से छठी,

आठवीं, दसवीं, बारहवीं, चौदहवीं या सोलहवीं रात्रि में गर्भाधान करें। कन्या के लिए पाँचवीं, सातवीं, नवमी और पन्द्रहवीं रात्रि उपयुक्त है। मनु, याज्ञवल्क्य आदि का मत है कि अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या और पूर्णिमा में गर्भाधान निषिद्ध था। वैदिक युग में इस संस्कार के कोई प्रमाण नहीं हैं, किन्तु उसने भी गर्भाधान के संकेत अवश्य हैं। सूत्रकाल में इस संस्कार के विधि-विधान अत्यन्त बढ़ गए, लेकिन वर्तमान काल में यह संस्कार नितान्त लुप्त हो गया है।

पुंसवन संस्कार

इस संस्कार का वर्णन सभी गृह्यसूत्रों में पाया जाता है। पुंसवन का अर्थ है— वह अनुष्ठान या कर्म जिससे पुत्र की उत्पत्ति हो अर्थात् 'पुमान प्रसूयते येन कर्मणा तत्पुंसवनमीरितम्' इस संस्कार को गर्भ स्थिति के तृतीय, चतुर्थ या आठवें मास तक कभी भी किया जा सकता था कुछ सूत्रकारों के अनुसार प्रथम गर्भ का पुंसवन संस्कार तृतीय मास से ही होना चाहिए। अगली सन्ततियों के समय यह सुविधानुसार भी किया जा सकता है। चन्द्रमा के पुष्य नक्षत्र में होने पर यह संस्कार सम्पन्न होता था, क्योंकि यह समय पुत्र-प्राप्ति के लिए उपयुक्त माना गया, इसमें एक विशिष्ट अनुष्ठान किया जाता था, जिसमें रात्रि के समय वटवृक्ष की छाल का रस निचोड़कर स्त्री के नाक के दाहिनी छिद्र में डाला जाता था। इससे गर्भपात की आशंका समाप्त हो जाती तथा सभी विघ्नवाधाएं दूर हो जाती थी।

सीमन्तोन्नयन संस्कार

यह संस्कार गर्भकाल का तीसरा संस्कार था इस संस्कार में गर्भवती स्त्री के केशों को उठाने का क्रिया-विधान है— 'सीमन्त उन्नीयते यस्मिन् कर्मणी तत्सीमन्तोन्नयम्' यह संस्कार मुख्यतः तीन कारणों से किया जाता था, प्रथम, आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार इस संस्कार द्वारा गर्भ के लिए अहितकारी अमंगलकारी शक्तियों का विनाश किया जाता था। द्वितीय, इस संस्कार का प्रयोजन माता के लिए ऐश्वर्य तथा गर्भस्थ शिशु के लिए दीर्घायुष्य की कामना भी था। तृतीय, बोधायन गृह्यसूत्र के अनुसार गर्भवती स्त्री को प्रसन्न करना भी इस संस्कार का प्रयोजन था, इस अवसर पर पति मंत्र पाठ करते हुए अपने हाथ से पत्नी के केशों में सुगन्धित तेल डालकर कंधी से उसे सँवारता था फिर उसका सुन्दर जूड़ा बाँधकर, उसकी 'सीमन्त' (माँगा को शुभ आभूषणों से सजाता था यही वजह है कि इस संस्कार का यह (सीमन्तोन्नयन) विशिष्ट नाम पडा।

गृह्यसूत्रों में इस संस्कार को करने का समय गर्भ स्थिति के चौथे या पाँचवें मास में कहा गया है (बोधायन, आश्वलायन आपस्तम्ब गृह्यसूत्र) जबकि स्मृतियों आदि ने यह समय छठे या आठवें मास तक बढ़ा दिया है (याज्ञवल्क्य स्मृति) गर्भ स्थित बालक की सुरक्षा की दृष्टि से सूत्रों और स्मृतियों ने पति और पत्नी के विशिष्ट कर्तव्यों का भी कथन किया है। यथा—ऊँचे स्थानों और हाथी, घोड़े पर गर्भिणी न चढ़े, संध्याकाल या दिन में न सोए और रात्रि में जागरण न करे यथासम्भवतः यात्रा न करे, श्रम न करे, भय रक्तस्रवण आदि से बचे। वर्तमान

युग में यह संस्कार लुप्त प्रायः है, किन्तु इसकी मनोवैज्ञानिक महत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता।

जातकर्म संस्कार

बालक के जन्म के समय नाभिच्छेदन से भी पूर्व इस संस्कार को किया जाता था। यदि किसी कारणवश उस समय जातकर्म संस्कार न किया जा सके तो दस दिनों के भीतर ही करना चाहिए। यह संस्कार पिता सम्पन्न करता था। इस संस्कार के अन्तर्गत प्रसव होने के बाद शिशु के जरायु को अलग कर, उसके मुख, आँख, नासिका, कान आदि अंगों की मलिनता को दूर करके नाडी का छेदन किया जाता था, फिर शिशु को स्नान कराकर, स्वच्छ वस्त्र पहनाकर पिता की गोदी में दिया जाता था। तत्पश्चात् हवन करते हुए मंत्र के साथ शिशु की जिह्वा पर दही-घी शहद में डुबोकर सोने की शलाका से 'ओ३म्' लिखते थे। फिर पिता बच्चे को दही, मधु और घी को स्वर्ण से मिश्रित करके बालक को चटाता था, वह बच्चे की दीर्घ आयु की कामना करता था, फिर उसके कान में मेंधाजनन मंत्र को पढ़ता और 'वाक' का उच्चारण करता था। वाक शब्द से सम्पूर्ण वैदिक साहित्य अभिप्रेत था जिनमें वेद प्रमुख थे, तत्पश्चात् शिशु प्रथम बार माँ का स्तनपान करता था। यह सम्पूर्ण संस्कार अत्यन्त महत्वपूर्ण था हालांकि बाद में धीरे-धीरे यह संस्कार अप्रचलित हो गया।

वेदों में इस संस्कार का नाम नहीं है किन्तु बालक के सुरक्षित तथा सरल जन्म के लिए अथर्ववेद में एक पूरा सूक्त ही प्राप्त होता है। जिसमें विविध प्रार्थनाएं तथा अभिचार विधियाँ हैं। बृहदारण्यक उपनिषद में इस जातकर्म का विस्तारपूर्वक वर्णन है, गृह्यसूत्रों में जातकर्म संस्कार का पूरा स्वरूप उपलब्ध होता है। किन्तु समय, विधि तथा विविध मंत्रों के प्रयोग के सम्बन्ध में सूत्रों में परस्पर मतैक्य नहीं है।

नामकरण संस्कार

प्राचीन हिन्दू समाज में नामकरण का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था बृहस्पति के अनुसार नाम ही लोक व्यवहार का प्रथम साधन है, यह गुण एवं भाग्य का आधार है। प्राचीन शास्त्रों में इस संस्कार का विस्तृत विवरण मिलता है। ऋग्वेद में भी 'नामन्' शब्द का उल्लेख है, नामकरण की यह परम्परा प्राचीनतम है क्योंकि वैदिक साहित्य में व्यक्ति तथा पदार्थों का नाम निर्धारित है नवजात शिशु के नामकरण के विषय में प्रथम उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में मिलता है—'तस्माय पुत्रस्य जातस्य नाम कुर्यात्'। इस संस्कार को सूत्रों तथा स्मृतियों में बालक के जन्म के दसवें दिन से लेकर दूसरे वर्ष के प्रथमदिन तक करने का पृथक-पृथक विधान है। मनु ने जन्म से दसवें या बारहवें दिन नामकरण संस्कार का उल्लेख किया है, और यदि इन दोनों दिन सम्भव न हो तो अन्य किसी शुभ तिथि या पवित्र मुहूर्त एवं नक्षत्र में नामकरण किया जा सकता है। मनु के अनुसार नाम मधुर ध्वनि वाले होने चाहिए बालक के नाम में सम तथा बालिका के नाम से विषम सख्या में अक्षर होने चाहिए। बालिका के नाम के अक्षर सरल, सुन्दर और मंगलमय हो इनके अन्त में दीर्घ स्वर आ या ई हों जो आशीर्वादात्मक हों। ब्राह्मण का नाम मांगल्यपूर्ण, क्षत्रिय का नाम बलयुक्त, वैश्य का नाम

धनवाचक तथा शूद्र का नाम जुगुप्सित होना चाहिए। चारों वर्णों के नाम के साथ-साथ एक उपाधि होनी चाहिए जिससे क्रमशः शर्म (प्रसन्नता), रक्षा, पुष्टि तथा प्रेष्य (सेवा) का संकेत मिले विष्णु पुराण के अनुसार ब्राह्मण का नाम शर्मा आदि पदों से, क्षत्रिय का नाम वर्मा आदि पदों से, वैश्य का नाम गुप्त आदि पदों से और शूद्र का नाम दास आदि पदों से युक्त होना चाहिए। इस संस्कार के अन्तर्गत पिता शिशु की स्वांस का स्पर्श करता है, तथा शिशु के कान में उसके नाम का उच्चारण करता है। वर्तमान युग में भी यह संस्कार पर्याप्त प्रचलित है।

निष्क्रमण संस्कार

नवजात शिशु की विधिविधान के साथ प्रथम बार गृह से बाहर लाने की विधि को निष्क्रमण संस्कार कहा जाता है। इसमें शिशु को प्रथम बार घर से बाहर निकाला जाता है, चौथे माह या तीसरे माह में इस संस्कार को सम्पन्न किया जाता था, इसमें शुभ नक्षत्र और शुभतिथि में शुद्ध वायु का सेवन कराने के लिए शिशु को घर से बाहर लाते हैं, तथा वह विश्व की विभूतियों—सूर्य चन्द्र आदि का दर्शन करता है। सूत्रकाल में यह संस्कार माता-पिता द्वारा शिशु को सूर्यदर्शन कराकर ही समाप्त हो जाता, तो परवर्ती साहित्य में अधिकाधिक विधिविधानों के साथ अलंकृत बालक को कुलदेवता के समक्ष लाना, वाद्य-संगीत के साथ देवता की पूजा करना, आठों लोकपाल, सूर्य, चन्द्र, वायुदेव एवं आकाश की स्तुति करना तथा बाद में ब्राह्मण को भोजन दानादि देने का समावेश भी हो गया है। प्रस्तुत संस्कार का उद्देश्य—वायु सेवन, सृष्टि अवलोकन का प्रथम शिक्षण है तथा दैहिक आवश्यकता की पूर्ति है।

अन्नप्राशन संस्कार

बालक की शरीर वृद्धि के साथ ही उसे पौष्टिक भोजन की आवश्यकता होती है, इसीलिए प्रायः सभी सूत्रों तथा स्मृतियों ने लगभग छह मास की आयु में बालक के अन्नप्राशन संस्कार का विधान किया है। लौगाक्षि ने छठे मास के साथ एक विकल्प भी दिया है, कि जब दूध निकलने लगे तब अन्नप्राशन करना चाहिए। इसमें दूध घी दही तथा पका हुआ चावल खिलाने का विधान था। गृह्यसूत्रों में इस संस्कार के समय विभिन्न पक्षियों के मांस एवं मछली खिलाए जाने का भी विधान मिलता है। इस संस्कार के दिन विभिन्न मंत्रपाठ के साथ भोजन पकाया जाता था, पिता— वाक, बल, पुष्टता आदि के लिए अग्नि में हविष डालता था और तदनन्तर बालक को भोजन का ग्रास देता था साथ ही भूः, भुवः, स्वः का उच्चारण करता था। वर्तमान युग में यह संस्कार सीमित रूप में ही प्रचलित है।

चूड़ाकरण संस्कार

इस संस्कार को चौलकर्म भी कहा जाता है। सर के समस्त केशों को काटकर सिर पर चूड़ा (शिखा) मात्र छोड़ने के कारण इस संस्कार का यह नाम पडा। गृह्यसूत्रों के अनुसार जन्म के प्रथम वर्ष की समाप्ति या तीसरे वर्ष की समाप्ति के पूर्व यह संस्कार सम्पन्न किया जाना चाहिए। कुछ स्मृतिकार इसकी अवधि पाँचवें तथा सातवें वर्ष तक रखते हैं, आश्वलायन का विचार है कि चूड़ाकर्म तीसरे या पाँचवें वर्ष में होना प्रशंसनीय है। किन्तु इसे

सातवें वर्ष या उपनयन के समय भी किया जा सकता है। इस संस्कार के समय उच्चारण किए जाने वाले वैदिक मंत्रों से यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि वैदिकयुग में भी यह प्रचलित थी भले ही उसे संस्कार का रूप न मिला हो। इस संस्कार के अन्तर्गत शुभ तिथि एवं मुहूर्त में पिता विभिन्न मंत्रपाठ करता हुआ स्वयं ही बालक के केश काटता था, कटे हुए केशों को गोबर में रखा जाता था। वर्तमान युग में कुछ बदलाव के साथ यह संस्कार प्रचलित है तथा इसे मुण्डन कहा जाता है।

कर्णवेध संस्कार

इस संस्कार में बालक का कान छेदकर उसमें बाली या कुण्डल पहना दिया जाता था। सुश्रुत ने इसका उद्देश्य 'रक्षा' तथा 'अलंकरण' बताया है, उनके अनुसार कर्णवेध अण्डकोष वृद्धि तथा अन्त्रबृद्धि (Hernia) के रोगों से छुटकारा दिलाता है। इस संस्कार का सर्वप्रथम अथर्ववेद में एक सूक्त में विधान मिलता है। बृहस्पति के अनुसार यह संस्कार जन्म के 10वें, 12वें या 16वें दिन किया जाता था, जबकि बौधायन ने इस संस्कार का विधान सातवें या आठवें मास में किया है। क्षत्रिय बालक का कर्णवेध स्वर्ण की सुई से, ब्राह्मण तथा वैश्य का रजत की सुई से तथा शूद्र का लोहे की सुई से किए जाने का विधान मिलता है। इस संस्कार में बच्चे को पूर्व दिशा की ओर मुँह करके बैठाया जाता था, फिर वैदिक मंत्रों के बीच पहले दायाँ तथा फिर बायाँ कान छेदा जाता था। वर्तमान युग में यह संस्कार प्रायः केवल पुत्रियों का ही कराया जाता है, तथा इसकी धार्मिक मान्यता भी समाप्त प्रायः है।

विद्यारम्भ संस्कार

इस संस्कार में बच्चों को अक्षरों का बोध कराया जाता था, इसीलिए इसे 'अक्षरारम्भ', 'अक्षरस्वीकरण' तथा 'अक्षरलेखन' नाम से भी जाना जाता है। सर्वप्रथम स्मृतियों में ही इस संस्कार का उल्लेख मिलता है इसका समय जन्म के पाँचवें वर्ष या उपनयन संस्कार के पूर्व बताया गया है। इस संस्कार का आयोजन कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी से लेकर आषाढ मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी तक शुभ तिथि दिवस और नक्षत्र में किया जाता था। इसमें शिक्षक पूर्व दिशा की ओर बैठकर पट्टी पर बालक से 'ओम्, स्वस्ति, नमः सिद्धाय आदि लिखवाकर विद्यारम्भ करवाता था। इसमें हरि (विष्णु) लक्ष्मी, विनायक, सरस्वती, बृहस्पति आदि की पूजा करके अग्नि में होम किया जाता था।

उपनयन संस्कार

विद्यार्थी के आचार्य के द्वारा ब्रह्मविद्या की शिक्षा देने के लिए स्वीकार किए जाने की विधि उपनयन संस्कार है। इस संस्कार के पश्चात् प्राचीन-काल में बालक का ब्रह्मचर्याश्रम जीवन प्रारम्भ होता था। शाब्दिक रूप से उपनयन का अर्थ है— समीप ले जाना अर्थात् माता-पिता या अभिभावकों का बालक को गुरु के समीप ले जाना, गुरु को समर्पण करना तथा गुरु का उस बालक को वेदाध्ययन तथा व्रतादि पालन कराने के लिए ग्रहण करना ही उपनयन संस्कार है। प्राचीनकाल में ही इस संस्कार का उद्गम हो गया था, ऋग्वेद, अथर्ववेद ऐतरेय ब्राह्मण, तैत्तिरीयब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण तथा कठ, मुण्डक, छान्दोग्य एवं बृहदारण्यक

उपनिषद में इस संस्कार से सम्बद्ध मूल्यवान सामग्री है। प्राचीन ग्रंथों में उपनयन के लिए विद्यार्थी की आयु तथा शुभ समय का भी निर्धारण किया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य विद्यार्थी के लिए न्यूनतम क्रमशः— आठ, ग्यारह तथा बारह वर्ष तथा अधिकतम सोलह, बाइस तथा चौबीस वर्ष की आयु का निर्धारण किया गया। ब्राह्मण का संस्कार वसन्त ऋतु में, क्षत्रिय का ग्रीष्म में, तथा वैश्य का पतझड़ में किए जाने का विधान था, सम्भवतः तीनों वर्णों के स्वभाव एवं तीनों ऋतुओं के प्रभाव में साम्य की दृष्टि से ऐसा किया गया था।

उपनयन संस्कार की प्रक्रिया का विस्तृत विवरण आश्वलायन गृह्यसूत्र में है। सबसे पहले विभिन्न विधिविधान के बीच बालक के केशों को कटवाकर स्नान आदि द्वारा स्वच्छ किया जाता था, तत्पश्चात् उसको नवीन उत्तरीय और अधोवस्त्र पहनाते थे फिर वह मेखला और दण्ड को धारण कर उपनयन के लिए आचार्य के समक्ष बैठता था, आचार्य शिष्य को यज्ञोपवीत देते थे। मूलरूप में यह उत्तरीय ही था जो क्रमशः सूक्ष्म होता हुआ धागे के रूप में प्रतीक मात्र रह गया। ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए यज्ञोपवीत क्रमशः रुई, सन तथा इन से बना होना चाहिए था। प्रत्येक यज्ञोपवीत में तीन सूत्र या धागे होते थे, ये तीन सूत्र व्यक्ति के तीन ऋणों—ऋषिऋण, देवऋण, पितृऋण के प्रतीक थे, अथवा सत्त्व, रजस, तमस इस त्रिगुण के प्रतीक थे, अथवा इन्हें ब्रह्मा, विष्णु और शिव का भी प्रतीक माना गया था। उपनयन संस्कार का एक अन्य महत्वपूर्ण विधान सावित्री उपदेश था, आचार्य के द्वारा सावित्रीमंत्र दिया जाना ही इस तथ्य का द्योतक है कि गुरु ने शिष्य को वेदाध्ययन के योग्य मानकर उसे स्वीकार कर लिया है। इसी मंत्र का उपदेश होने पर बालक का दूसरा जन्म सिद्ध होता था, जिसमें उसकी माता सावित्री तथा पिता आचार्य होता था। तत्पश्चात् उसे आदेश दिया जाता है कि वह उपस्थित जनसमुदाय से भिक्षा माँगे, भिक्षाटन के बाद ब्रह्मचारी आचार्य के कुल का ही एक सदस्य हो जाता था। इस प्रकार उपनयन संस्कार की समाप्ति होती थी। वर्तमान युग में उपनयन संस्कार का प्राचीन स्वरूप लगभग समाप्तप्रायः है, उपनयन का अर्थ केवल जनेऊ धारण करना रह गया है।

वेदारम्भ संस्कार

गृह्यसूत्रों तथा धर्म-सूत्रों में कहीं इसका उल्लेख नहीं है। सर्वप्रथम व्यास स्मृति (600-900 ई) में वेदारम्भ संस्कार का वर्णन प्राप्त होता है। उपनयन संस्कार के बाद ब्रह्मचारी जब वेदों का अध्ययन प्रारम्भ करता था तब यह संस्कार किया जाता था। वेदाध्ययन संस्कार के प्रारम्भ में मातृपूजा होती थी, उत्तम तिथि शोधकर, प्रारम्भिक मंगल कृत्यों को करके गुरु अपने शिष्य को प्रज्वलित अग्नि की पश्चिम ओर बिठा देता था, फिर यदि ऋग्वेद का प्रारम्भ करना होता था तो पृथ्वी तथा अग्नि को, यजुर्वेद के अध्ययन में अन्तरिक्ष तथा वायु को, सामवेद के अध्ययन में द्यौस तथा सूर्य को और अथर्ववेद के अध्ययन के समय दिशाओं एवं चन्द्रमा को घी की दो आहुतियाँ दी जाती थी। यदि सभी वेदों का अध्ययन प्रारम्भ करना होता था तो सभी देवताओं को आहुतियाँ दिए जाने का विधान था।

अन्त में, ब्राह्मणों को दक्षिणा देने के बाद वेद का अध्यापन प्रारम्भ किया जाता था।

केशान्त या गोदान संस्कार

गुरु के पास रहकर अध्ययन करते हुए विद्यार्थी की सोलह वर्ष की आयु में प्रथम बार दाढ़ी-मूँछ बनवाई जाती थी इसे 'केशान्त संस्कार' कहा जाता था। इस अवसर पर गुरु को एक गाय दक्षिणा स्वरूप दी जाती थी इसी कारण इसे 'गोदान संस्कार' की भी संज्ञा प्रदान की गई है। केशान्त संस्कार की विधि चूडाकर्म जैसी ही थी। वैदिक मंत्रों के बीच नाई विद्यार्थी की दाढ़ी-मूँछ काटता था, बालों को पानी में प्रवाहित कर दिया जाता था। फिर विद्यार्थी गुरु को एक गाय दक्षिणा में देता था। अन्त में, वह मौन व्रत रखता था तथा एक वर्ष तक कठोर अनुशासन का जीवन व्यतीत करता था।

समावर्तन संस्कार

गुरुकुल में शिक्षा समाप्त कर लेने के पश्चात् विद्यार्थी जब अपने घर लौटता था तब समावर्तन नामक संस्कार सम्पन्न होता था। अथर्ववेद में समावर्तन संस्कार का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है, समावर्तन का अर्थ है—'गुरु के गृह से अपने घर लौट आना'। इस संस्कार को 'स्नान' भी कहा गया है। क्योंकि इस अवसर पर स्नान सबसे महत्वपूर्ण कार्य था, इसी के बाद विद्यार्थी 'स्नातक' बनता था। आश्वलायन के अनुसार स्नातक तीन प्रकार के होते थे— व्रतस्नातक, विद्यास्नातक और विद्याव्रतस्नातक, इसमें सर्वश्रेष्ठ विद्याव्रतस्नातक एवं निम्न व्रतस्नातक था। समावर्तन संस्कार के अन्तर्गत विद्याध्ययन की समाप्ति पर शिष्य गुरु को आमन्त्रित करके अपने ब्रह्मचारी जीवन को समाप्त करने की आज्ञा मांगता था, और गुरुदक्षिणा देकर आचार्य को सन्तुष्ट करता था। गुरु से अनुमति मिल जाने पर पूजा, स्नान आदि की परिपाटी सम्पन्न की जाती थी। इसमें छात्र अपने ब्रह्मचारी जीवन की तमाम वस्तुओं को त्याग कर उन वस्तुओं को अपनाता था जो छात्र जीवन में निषिद्ध था। इस प्रकार उसके नए जीवन की शुरुआत होती थी, वर्तमान युग में समावर्तन संस्कार भी समाप्त हो गया है। शिक्षा का स्वरूप बदल जाने के कारण सम्प्रति विश्वविद्यालयों में किए जाने वाले दीक्षान्त समारोह को समावर्तन संस्कार का प्रतीक माना जा सकता है।

विवाह संस्कार

यह प्राचीन हिन्दूसमाज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार है जिसकी महत्ता आज भी विद्यमान है गृह्यसूत्रों में प्रायः संस्कारों का वर्णन विवाह से ही प्रारम्भ किया है। गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ इसी संस्कार से होता था, हिन्दू समाज में इसे एक पवित्र धार्मिक संस्था के रूप में मान्यता दी गई है। जिसका उद्देश्य पति एवं पत्नी के सहयोग से विभिन्न पुरुषार्थों को पूरा करना था, इसे एक यज्ञ माना गया जिसे न करने वाला यज्ञरहित होता था। वैदिक युग में वर-वधू की आयु को निश्चित किया गया था, वर की न्यूनतम आयु 25 वर्ष और वधू की न्यूनतम आयु 16 वर्ष कही गई है। हालांकि कुछ स्मृतियों ने कन्या की आयु बहुत कम कर दी। इस सम्बन्ध में कामशास्त्र का मत है कि कन्या की आयु वर से तीन वर्ष कम हो। प्राचीन शास्त्रों में विवाह के आठ प्रकारों का

विधान मिलता है— ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य, गान्धर्व, आसुर, राक्षस और पिशाच सामान्यतः इनमें प्रथम चार विवाहों को प्रशस्त और अन्तिम चार को अप्रशस्त कहा गया है, अन्तिम दो तो अधर्मयुक्त है। आर्य परिवारों के इन विवाहों में प्रजापत्य विवाह सबसे अधिक लोकप्रिय और मान्य था, क्षत्रियों में गान्धर्व विवाह का प्रचलन मान्य समझा गया था, इसके अलावा विवाह के दो अन्य प्रकार—अनुलोम विवाह एवं प्रतिलोमविवाह भी प्रचलित थे। अनुलोम विवाह में वर उच्च जाति का एवं वधू निम्न जाति एवं प्रतिलोम विवाह में वर निम्न जाति का एवं वधू उच्चजाति की होती थी। सगोत्र विवाह, सप्रवर विवाह, सपिण्ड विवाह आदि का निषेध था। वर्तमान युग में इस संस्कार का विधिरूप तो लगभग यथावत् रहा है किन्तु अन्य अनेक विस्तार तथा सूक्ष्मताएं लुप्त हो गई हैं। वस्तुतः आजकल इस संस्कार से जुड़ी मान्यताएं ही पर्याप्त परिवर्तित हो गई हैं।

अन्त्येष्टि संस्कार

किसी भी व्यक्ति के जीवन का अन्तिम संस्कार अन्त्येष्टि है। जिसके द्वारा उसके इहलौकिक अस्तित्व का पटाक्षेप हो जाता है। यह संस्कार मृतक व्यक्ति के सम्बन्धियों के द्वारा सम्पन्न किया जाता है, जिससे परलोक में वह व्यक्ति सुख और शांति पा सके। बौधायन के अनुसार जन्म के बाद के संस्कारों द्वारा व्यक्ति लोक को जीतता है तथा इस (अन्त्येष्टि) संस्कार के द्वारा वह स्वर्ग की प्राप्ति करता है। हिन्दूसमाज में मृतक शरीर को जलाने, गाड़ने या फेंकने की प्रथा प्रचलित थी, शवदाह के प्रायः तेरह दिन बाद तेरही होती थी और इसमें पिण्डदान, श्राद्ध एवं ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था, इसके बाद मृतक का परिवार शुद्ध हो जाता था। ये सभी क्रियाएं आज भी हिन्दू समाज में विधिपूर्वक सम्पन्न होती हैं।

निष्कर्ष

अतः विभिन्न संस्कारों के इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति में संस्कारों की योजना एक विशिष्ट प्रयोजन से की गई थी। गर्भस्थिति से मृत्यु के पश्चात् तक व्यक्ति के शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास और परिष्करण के लिए विभिन्न संस्कारों की परिकल्पना की गई। प्रारम्भिक युग में संस्कारों का स्वरूप विस्तृत होता रहा और गृह्यसूत्रों तथा स्मृतियों में आकर वह सुस्थिर और अपरिवर्तनीय हो गया। कालक्रम में संस्कृत भाषा प्रतिदिन के प्रयोग की भाषा न रही और उसी के साथ-साथ अधिकांश संस्कार भी सामान्य जन की बुद्धि और मन से दूर होते हुए वस्तुतः वर्तमान युग में नामकरण, मुण्डन, विवाह, अन्त्येष्टि आदि कुछ संस्कार ही शेष बचे हैं। अन्य संस्कारों का या तो नाममात्र के लिए निर्वाह कर लिया जाता है और या भगवान के चित्र अथवा मूर्ति के आगे नमस्कार मात्र करके संस्कार पूर्ण हुआ समझ लिया जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ—सूची

1. अग्निवेश्य गृह्यसूत्र, एल.ए. रवि वर्मा, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज, त्रिवेन्द्रम, 1940
2. आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, १० विन्ना स्वामी शास्त्र, चौखाम्बा संस्कृत सीरीज, ऑफिस वाराणसी, 1971

3. आश्वलायन गृह्यसूत्र, डॉ० नरेन्द्र नाथ शर्मा, चौखम्बा, विद्या भवन, 1979
4. काठक गृह्यसूत्र, डॉ० विलेम कालेण्ड, दयानन्द महाविद्यालय, संस्कृत ग्रन्थालय, लाहौर, 1982
5. पारस्कर गृह्यसूत्र, गोपाल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, ऑफिस वाराणसी, 1926
6. पारस्कर गृह्यसूत्र, डॉ० हरिदत्त शास्त्री, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी
7. बौधायन गृह्यसूत्रम्, आर० शाम शास्त्री, पाणिनी, दरियागंज रोड, नई दिल्ली, 1982
8. भारद्वाज गृह्यसूत्रम्, हैन्नेटी जे० डब्ल्यू० सालुमंश, मेहरचन्द लक्ष्मणदास पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1913
9. मानव गृह्यसूत्र, वीलिमय कैलेण्ड, श्री सतगुरु पब्लिकेशन, दिल्ली
10. मानव गृह्यसूत्र, एफ० नॉवर, सेण्ट पीटर्सबर्ग, 1987
11. मनुस्मृति, डॉ० सुरेन्द्र कुमार, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली
12. बराह गृह्यसूत्र, रघुवीर, मेहरचन्द लक्ष्मणदास पब्लिकेशन, नई दिल्ली
13. शंखायन गृह्यसूत्र, एस०आर० सहगल, श्री सतगुरु पब्लिकेशन, दिल्ली
14. शंखायन गृह्यसूत्र, एच० ओल्डेन वर्ग, इण्डियन स्टडीज, 15
15. संस्कार विधि, स्वामी दयानन्द सरस्वती, वैदिक पुस्तकालय, दयानन्द आश्रम, अजमेर
16. सत्यार्थ प्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती, वैदिक पुस्तकालय, दयानन्द आश्रम, अजमेर
17. संस्कार चन्द्रिका, डॉ० सत्यव्रत सिद्धांतालंकार, विजयकृष्ण लखनपाल, 4/24 आफिस अली रोड, नई दिल्ली
18. संस्कार विधि मण्डनम्, वैद्य रामगोपाल शास्त्री, श्रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत सं० 2033
19. हिन्दू संस्कार, डॉ० राजवली पाण्डेय, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1966
20. वैदिक साहित्य का इतिहास, डॉ० विद्यालंकार, हिन्दी साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़
21. वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, बिहार राष्ट्रभाषा पटना
22. संस्कार दीपक (द्वितीय सं०), पं० दुर्गाधर झा, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
23. संस्कार प्रकाश, डॉ० भवानी शंकर त्रिवेदी, श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय विद्या पीठ, दिल्ली
24. हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, पी० वी० काणे, गवर्नमेन्ट ओरियंटल सीरीज, पूना, 1930-55
25. हिन्दू संस्कार, डॉ० राजवली पाण्डेय, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1966